© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

बौद्ध काल में शुद्रों की समाजिक एवं आर्थिक अवस्था

राम अवधेश कुमार यादव (शोधार्थी)
स्नातकोत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास
पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग
ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय
कामेश्वरनगर, दरभंगा

शोध आलेख सार – शूद्र की अवस्था प्राचीन काल से ही दयनीय रही है। बौद्ध युग में भी वह अत्यन्त निम्न और हेय माना जाता था। वह विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों और बंधनों से आबद्ध था। उसका प्रधान कर्म द्विजो की सेवा करना था। पालि त्रिपिटक एवं धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि बौद्ध युग में अनेक उपजातियों को शूद्र माना गया था। वैसे तो शूद्रो का वर्ण–व्यवस्था के अंतर्गत चौथा वर्ण माना जाता था।

मुख्य शब्द – बौद्ध, काल, शुद्रों, समाजिक, आर्थिक, पालि, त्रिपिटक।

शूद्र की अवस्था प्राचीन काल से ही दयनीय रही है। बौद्ध युग में भी वह अत्यन्त निम्न और हेय माना जाता था। वह विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों और बंधनों से आबद्ध था। उसका प्रधान कर्म द्विजो की सेवा करना था। पालि त्रिपिटक एवं धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि बौद्ध युग में अनेक उपजातियों को शूद्र माना गया था। वैसे तो शूद्रो का वर्ण–व्यवस्था के अंतर्गत चौथा वर्ण माना जाता था, लेकिन बौद्ध युग नें इसके अंतर्गत अनेक जातियाँ गिनीं जाने लगी थीं।[1] शूद्र मुख्यतः सेवक और श्रमिक का कार्य करते थे। इन्हें कृषि से सम्बद्ध कार्यो में लगया जाता था। जातकों से ज्ञात होता है कि इन्हें कर्मकार कहा जाता था। कर्मकार का परिश्रमिक प्रतिदिन डेढ़ मासक था।[2] पातंञजलि महाभाष्य के अनुसार चार मासक, कौटिल्य ने खेतिहर का पारिश्रमिक 2/3 मासक निर्धारित किया था। इस पारिश्रमिक से दो व्यक्तियों को रोटी मिल सकती थी।

शूद्रां का एक वर्ग शिल्पी था। लोहार, बढ़ई आदि का बड़ा महत्व था। धीरे–धीरे व्यवसाय पर आधारित नई–नई जातियों का बनना प्रारंभ हुआ। इस प्रकार पेशे से जो जातियाँ बनी उसकी विस्तृत चर्चा त्रिपिटक और जातकों में मिलती है। जो शिल्प के आधार पर जातियाँ बनीं, उनमें पेशकार या तंतुवाय (बुनकर), तच्चक (बढ़ई), कम्मार या कर्मार (लोहार), दंतकार, कुम्भकार (कुम्हार) आदि का उल्लेख मिलता है,[3] और जिन ग्रामों में इन जातियों का निवास था, उसी के नाम से ग्राम बन गए, जैसे – कुम्भकार–ग्राम, कम्मार–ग्राम आदि के नाम से पुकारे जाते थे।

अनेक शूद्र जातियाँ ऐसी थी, जो असंगठित, अव्यवस्थित तथा भ्रमणशील रहती थी। उनका मुख्य व्यवसाय लोगो का मनोरंजन करना था। इस प्रकार जातियों में नट, लंघ नट, मायाकार, सपेरे, नेवला पालने वाले, गंधर्व (गायन–वादन) भेरी बजाने वाले, शंख वादक, सर्प दंस को ठीक करने वाल आदि का विशेष उल्लेख मिलता है।

इन घुम्मकड़ों की कर्मों के आधार पर विभिन्न जातियाँ में गोपालक, पशुपालक, तृणहारक (घास काटने वाले), लकड़हारे, वनकम्मिक (वनों में काम करने वाले) आदि का उल्लेख माज्झिम निकाय और जातकों में मिलता है। मुख्यतः इन जातियों का ग्रामीण जीवन था और ये शिल्पी जातियों की तरह अलग–अलग ग्रामों में बसने लगी थीं। इन जातियों का सामाजिक एवं आर्थिक स्तर बहुत निम्न था।

पालि त्रिपिटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इस युग में वर्णव्यवस्था के अतिरिक्त एक ऐसे वर्ग का निर्माण हुआ, जिसके अंतर्गत हीन जतियाँ आती थी। इन हीन जातियों में चंडाल (चांडाल), नेसाद (निषाद), पुक्कुस (पाल्कष), वेण तथा रथकार आदि गिने जाते थे। इन जातियों के लोगों को नीच कुलोत्पन्न कहा जात था। इनके कर्म नीच शिल्प थे। नीच कर्मो के कारण इन्हें तृरस्कत समझा जाता था। यर्थाथ में जन्म और कर्म से ये जातियाँ अधम मानी जाती थी।

अधिकांश शूद्र सेवक थे, जो मजदूरी का कार्य करते थे। जिस प्रकार आधुनिक युग में मजदूरों की आर्थिक स्थिति होती है, संभवतः इसी प्रकार की आर्थिक स्थिति प्राचीन काल में रही होगी। अधिकांश शूद्रों को कृषि से संबंद्ध कार्यों में लगया जाता था।[4] ''ऐसे शूद्रों के पास इतनी भू–संपत्ति नहीं रहती थी कि वे राज्य को उसका कर देते।''[5] इन्हें भृत्क या कर्मकार कहा जाता था। जातकों से ज्ञात होता है कि मजदूर (कर्मकार) की मजदूरी प्रतिदिन डेढ़ माषक थी।''[6] कौटिल्य के अर्थशास़्त्र में ''खेतिहर मजदूर की मजदूरी भोजन के साथ 2/3 माषक निर्धारित की गई थी।''[7]

इस अल्प मजदूरी को देखकर उस युग में शूद्रो की आर्थिक स्थिति का महज ही अनुमान लगाया जा सकता है। '' यह मजदूरी इतनी नहीं थी जिससे श्रमिक वर्ग सुखमय जीवन व्यतीत कर सकता था।''[8] शूद्रकों की आय साधारण अवश्य थी, परंतु उन्हें समाज में हेय एवं निम्नदृष्टि से नहीं देखा जाता था, क्योंकि यदि ऐसा होता तो आपातकाल में उच्चवर्ण के लोग इस वृत्ति का आश्रय लेने का उल्लेख मिलता है।''[9]

शूद्र वर्ण का एक वर्ग शिल्पियों का था। इस वर्ग ने बुद्ध के युग में ग्रामीण अर्थ–व्यवस्था में प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया था। लोहार और बढ़ई आदि शिल्पियों के प्रयोग के लिए हथौड़े, ककच (आरा), तक्षणी आदि औजारों के साथ कृषि कर्म में प्रयुक्त हल और कुल्हारी जैसे उपकरणों के निर्माता ये ही लोग थे। तकनीकी क्षेत्र में समाज के क्रमिक विकास के क्रम में धीरे–धीरे नवीन व्यवसायी जातियों का उद्भव होता रहा था। व्यवसाय और शिल्प कालांतर में पैतृक होते चले गये थे और उनमें संलग्न लोगों की विशिष्ट जातियाँ बनती चली गई।

इस काल में सबसे निकृष्ट स्थिति चांडाल, नेसाद, पुक्कुस, वेण तथा रथकार जातियों की थी। प्राचीन काल में जातकों में इस प्रकारके अनेक उदाहरण मिलते है। एक क्रुद्ध रानी का प्रसंग है। वह रानी अपनी पुत्री से कहती है, तू वेणी है, चाण्डाली है। इसी प्रकार एक ब्राह्मण अपनी दुश्चरित्रा पत्नी को पाप चाण्डाली कहता है। ''इन जातियों की आर्थिक अवस्था अत्यंत एवं सर्वाधिक शोचनीय थी।''[10] ''चाण्डालों को समाज में सर्वत्र तिरस्कृत होना पड़ता था और बेचारे नगर सीमा से हटकर अपने घर बनाते थे।''[11] चाण्डाल अस्पृश्य तो थे ही, तथा साथ ही साथ अदर्शनीय भी।''[12] इनकी जीविकोपार्जन का काई निश्चित साधन नहीं था, इसलिए ''ये लोग नगर–प्रवेश –द्वार के निकट ही अपनी कला के प्रदर्शन द्वारा जीविकोपार्जन किया करते थे।''[13] ''जिस प्रकार

जानवरों में सबसे निकृष्ट श्रृंगाल होता है उसी प्रकार मनुष्यों में चाण्डाल।''[14] चाण्डाल इतने अपवित्र माने जाते थे कि उनके स्पर्श से हवा भी दूषित हो जाती थी।''[15] जातकों में चाण्डालों की स्थिति नारकीय, पाशविक एवं शोचनीय बताई गई है।

चाण्डालों की आर्थिक स्थिति जर्जर और शोचनीय होती थी। वे लोग बस्ती के बाहर झोपड़ियों में रहा करते थे। ''उनकी संपत्ति के रूप में केवल मिट्टी के बर्त्तन और गधे माने जाते थे।''[16] ''वे लोग मृत्तकों के वस्त्र धारण करते थे।''[17] ''लोहे के आभूषण पहनते थे।''[18] ''टूटे बर्त्तनों में भोजन करते थे और यत्र–तत्र घूमते रहते थे।''[19] इस प्रकार चाण्डालों को समाज में अधम और नीच माना जाता था। ''चाण्डाल योनि में जन्म पाने का अर्थ था, जीवन के सबसे बड़े अभिशाप का भागी बनना।''[20]

किसी भी वर्ण एवं जाति की आर्थिक स्थिति उसके व्यवसाय पर निर्भर करती है। चाण्डालों के व्यवसायों का उल्लेख यत्र–तत्र जातकों में मिलता है। इन लोंगों को निम्नकोटि के कार्यों में लगाया जाता था। मृतकों को जलाना इनका मुख्य कार्य था।[21] जिस मृतक के संबंधी न हो, तो शव ढ़ोने का कार्य चाण्डाल करते थे।[22] सड़कों पर झाड़ू लगाने और जीर्ण वस्तुओं के उद्धार का काम भी इनसे लिया जाता था।[23] कुछ एक को अपराधियों को कोड़े लगाने या उनका अंगच्छेद करने जैसे कामों के लिए नियुक्त किया जाता था।[24] जिन अपराधियों को मृत्युदंड मिला हो, उनकी हत्या का काम भी चाण्डालों से लिया जाता था।[25] कई चाण्डाल ऐन्द्रजलिक बन जाते थे।[26]

चाण्डालों की आर्थिक स्थिति अत्यंत शोचनीय होने के कारण इनके बालक–बालिकाएं चिथरों में लिपटे और हाथ में भिक्षापात्र लिए नगर में प्रवेश करते थे।[27] चाण्डाल लोग प्रायः लाल या पीले कपड़े पहनते थे।[28] उनके कपड़े प्रायः जीर्ण रहते। उपरी भाग का दुपट्टा प्रायः लाल होता था। वे एक कमरबंधक भी बांधते थे जिसके उपर गंदा कपड़ा लपेटा रहता था।[29] वे अपना सिर को भी पीले कपड़े से बांधा करते थे।[30]

चाण्डालों की तरह निषाद् भी नगरों के बाहर रहते थे, उनका मुख्य पेशा जंगलों में विचरण और आखेट करना था।[31] मनु के अनुसार, इनका काम मछली मारना था।[32] काम की प्रकृति के अनुसार इनका स्थान समाज में हीन हो गया था।[33] निम्न व्यवसाय होने के कारण निषादों की आर्थिक स्थिति भी अत्यंत शोचनीय थी।

संदर्भः–

1. जयशंकर प्रसाद – प्रचीन भारत का समाजिक इतिहास बिहार ग्रंथ आकदमी पटना पृ0–92
2. जातक, 3, पृ0–326
3. दीघ निकाय,। पृ0–51
4. मदन मोहन सिंह– बुद्धकालीन समाज एवं धर्म बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी पृ0–24
5. आपस्तंभ धर्मसूत्र– 2/2/10/26/5;
6. जातक, 3, पृ0–326
7. अर्थशास्त्र– 2/24 अनुवादक – उदयवीर शास्त्री

8. मदन मोहन सिंह–बुद्धकालीन समाज एवं धर्म, बिहार ग्रंथ आकदमी पटना पृ0–24
9. जातक–4 पृ0–475
10. मदन मोहन सिंह–बुद्धकालीन समाज एवं धर्म, बिहार ग्रंथ आकदमी पटना पृ0–26
11. जातक–4 पृ0–390
12. मदन मोहन सिंह–बुद्धकालीन समाज एवं धर्म, बिहार ग्रंथ आकदमी पटना पृ0–26
13. पूर्वोक्त
14. पूर्वोक्त
15. पूर्वोक्त
16. मनुस्मृति – 10/51
17. मनुस्मृति – 10/51
18. मनुस्मृति – 10/52
19. मनुस्मृति – 10/52
20. पूर्वोक्त, पृ0–28
21. पूर्वोक्त
22. मनुस्मृति – 10/55
23. जातक, 4, पृ0–388
24. जातक, 4 पृ0–41
25. मनुस्मृति – 10/56
26. पूर्वोक्त
27. पूर्वोक्त
28. जातक, 6 पृ0–156
29. जातक, 4 पृ0–379
30. जातक, 6 पृ0–156
31. जातक, 5 पृ0–110
32. मनुस्मृति – 10/48
33. पूर्वोक्त, पृ0–29